JAYJINENDRA
CHHADHALA PRESENTATION
BY
SAURABH & GAURAV JAIN INDORE (INDIA)

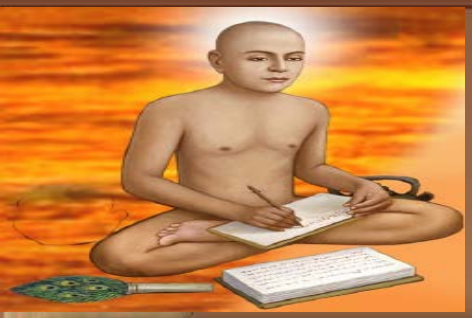

छहढाला

अध्यात्मप्रेमी कविवर पण्डित दौलतरामजी कृत

दूसरी ढाल

दूसरी ढाल में संसार भ्रमण के मूलभूत कारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का अगृहीत और अगृहीत भेद करके निरुपण किया गया है। यह वर्णन इतना अद्‌भुत बन पड़ा है कि संक्षेप में ही जीवादि तत्त्वों का सही स्वरूप एवं उनके सन्दर्भ में होनेवाली विपरीत मान्यताओं का एकसाथ, एक ही छन्द में दिग्दर्शन कराने में कविवर सफल रहे हैं।

संसार दुःख का मूलकारण : मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र

संसार दुःखों का मूलकारण
अगृहीत मिथ्यादर्शन का स्वरूप
एवं प्रयोजनभूत जीवादि सात तत्त्वों सम्बन्धी भूल
अगृहीत मिथ्याज्ञान का स्वरूप
अगृहीत मिथ्याचारित्र का स्वरूप
गृहीत मिथ्यादर्शन एवं कुगुरु-कुदेव-कुधर्म का स्व
गृहीत मिथ्याज्ञान का स्वरूप
गृहीत मिथ्याचारित्र का स्वरूप
मिथ्यात्वादि के परित्यागपूर्वक आत्महित की प्रेरणा
दूसरी ढाल का सारांश

छन्द - १

संसार परिभ्रमण के दुःखों का मूलकारण

ऐसे मिथ्या दृग्-ज्ञान-चरणवश, भ्रमत भरत दुःख जन्म-मरण।
तातें इनकूं तजिये सुजान, सुनि तिस संक्षेप कहूँ बखानि॥

मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्र से ही जीव को दुःख होता है। तात्पर्य यह है कि शुभाशुभ रागादि विकार तथा परद्रव्यों के साथ एकत्व की मिथ्याश्रद्धा, ज्ञान और आचरण से ही जीव दुःखी होता है। वस्तुतः कोई संयोग सुख-दुःख का कारण नहीं हो सकता – ऐसा जानकर, सुखार्थी जीवों को इन मिथ्याभावों का त्याग करना चाहिए; इसलिए मैं यहाँ संक्षेप में इन तीनों (मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र) के स्वरूप का वर्णन करता हूँ।

छन्द - २

अगृहीत मिथ्यादर्शन एवं जीव तत्त्व का निरुपण

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधैं तिनमाहिं विपर्ययत्व।
चेतन कौ है उपयोग रूप, बिनमूरति चिन्मूरति अनूप॥

जीव

↓

ज्ञान-दर्शन उपयोगस्वरूप

अमूर्तिक, चैतन्यमय तथा उपमा रहित है।

अगृहीत मिथ्यादर्शन →

जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष
इन सात तत्त्वों
के विपरीत श्रद्धान को अगृहीत मिथ्यादर्शन कहते हैं।

छन्द - ३

जीव की अन्य द्रव्यों से भिन्नता और अज्ञानी की जीवतत्त्व सम्बन्धी विपरीतश्रद्धा

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी है जीव चाल।
ताकूँ न जानि विपरीत मान, करि करैं देह में निज पिछानि॥

पुद्गल
↓
धर्म
↓
अधर्म
↓
आकाश
↓
काल

अजीवद्रव्य

जीवतत्त्व सम्बन्धी विपरीत श्रद्धा

- शरीर ही मैं हूँ,
- शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ,
- अपनी इच्छानुसार शरीर की व्यवस्था रख सकता हूँ
- शरीर को ही आत्मा मानता है

छन्द - ४

मिथ्यादृष्टि जीव की शरीरादि परद्रव्यों के प्रति निजत्त्व की कल्पना

मैं सुखी-दुःखी मैं रंक-राव, मेरौ धन-गृह-गोधन प्रभाव।
मेरे सुत-त्रिय मैं सबल-दीन, बेरूप-सुभग मूरख-प्रवीन॥

जीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की भूल

- बाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी और प्रतिकूल संयोगों से मैं दुःखी
- शरीराश्रित उपदेश तथा उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है।
- मैं मनुष्य; मैं कुरूप; मैं सुन्दर
  मैं बलवान; मैं निर्बल
  मैं निर्धन मैं धनवान

छन्द - ५

अजीव और आस्रवतत्त्व के सम्बन्ध में होनेवाली भूल

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नसत आपकूं नास मान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही कूं सेवत गिनत चैन॥

अजीवतत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

- शरीर की उत्पत्ति / संयोग होने से मैं उत्पन्न हुआ और शरीर का नाश / वियोग होने से मैं मर जाऊँगा
- शरीर के संयोग-वियोग से आत्मा का जन्म-मरण मानता है।
- धन, शरीरादि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपने में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन
- शरीर में क्षुधा-तृषारूप अवस्था होने से मुझे क्षुधा-तृषादि होते हैं
- शरीर कटने से मैं कट गया

छन्द - ५

आस्रवतत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

- जीव अथवा अजीव कोई भी परपदार्थ, आत्मा का किञ्चित् भी सुख-दुःख सुधार-बिगाड़ अथवा इष्ट-अनिष्ट नहीं कर सकते;
- पर में कर्तृत्त्व, ममत्वरूप मिथ्यात्व तथा राग-द्वेषादि शुभाशुभ आस्रवभाव, प्रत्यक्ष दुःखदायक और बन्ध के ही कारण होने पर भी अज्ञानी जीव उन्हें सुखकारी जानकर सेवन करता है।

- शुभभाव भी आस्रव है, बन्ध का ही कारण है; फिर भी उसे हितकर मानता परद्रव्य, जीव को लाभ-हानि नहीं पहुँचा सकते; तो भी अज्ञानी जीव उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर, उनमें प्रीति-अप्रीति करता हैं।
- वह मिथ्यात्व, राग-द्वेष का दुःखमय स्वरूप नहीं जानता और परपदार्थ मुझे सुख-दुःख देते हैं अथवा राग-द्वेष-मोह कराते हैं — ऐसा मानता है।

छन्द - ६

बन्धतत्त्व और संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा

सुभ-असुभ बन्ध के फल मँझार, रति-अरति करैं निजपद विसार।
आतम हित हेतु विराग ज्ञान, ते लखैं आपकूं कष्ट दान॥

बन्ध के फल

बन्धतत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

अघातिकर्म के फलानुसार पदार्थों की संयोग-वियोगरूप अवस्थाएँ होती हैं। मिथ्यादृष्टि जीव, उन्हें अनुकूल-प्रतिकूल मानकर, उनसे मैं सुखी-दु:खी हूँ — ऐसी कल्पना द्वारा उनमें राग-द्वेष, आकुलता करता है।

- धनादितथा योग्य स्त्री-पुत्रादि का संयोग होने से रति करता है।
- रोग, निन्दा, निर्धनता, पुत्र-वियोगादि होने से अरति करता है।

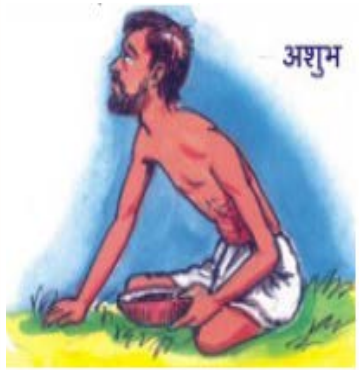

- वास्तव में पुण्य-पाप दोनों बन्धनकर्ता हैं — ऐसा न मानकर, पुण्य को हितकारी मानता है।
- तत्त्वदृष्टि से तो पुण्य-पाप दोनों अहितकर ही हैं, परन्तु अज्ञानी ऐसा निर्धाररूप नहीं मानता।

छन्द - ६

संवरतत्त्व की विपरीत श्रद्धा

संवरतत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

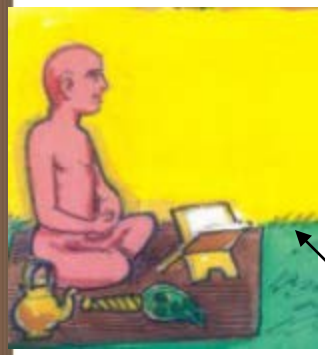

निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ही जीव को हितकारी हैं।

≈

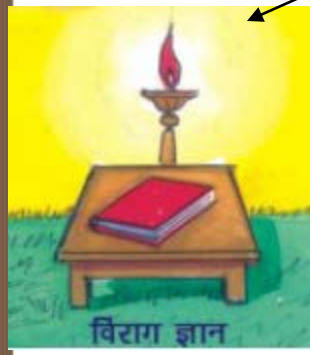

स्वरूप में स्थिरता द्वारा राग का जितना अभाव, वह वैराग्य है और वह सुख का कारण है; तथापि अज्ञानी जीव उसे कष्टदायक मानता है।

छन्द - ७

जीव की निर्जरा और मोक्षतत्त्व के सम्बन्ध में होनेवाली भूल और अगृहीत मिथ्याज्ञान का स्वरूप

रोकी न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतिजुत कछुक ज्ञान, सो दुःखदाई अज्ञान जान॥

निर्जरातत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

- आत्मा में शुद्धि की आंशिक वृद्धि तथा अशुद्धि की आंशिक हानि होने को संवरपूर्वक निर्जरा कहा जाता है। निर्जरा निश्चय सम्यग्दर्शनपूर्वक ही होती है।
- ज्ञानानन्दस्वरूप में स्थिर होने से शुभ-अशुभ इच्छा का निरोध होना, तप है।
- तप दो प्रकार का है - (१) बालतप, (२) सम्यक्तप।

छन्द - ७

अज्ञानदशा में किया जानेवाला तप, बालतप है; उससे कभी सच्ची निर्जरा नहीं होती।

वह अपनी अनन्त ज्ञानादि शक्ति को भूलकर, पराश्रय में सुख मानता है; शुभाशुभ इच्छा तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों की चाह को नहीं रोकता।

वह अपनी अनन्त ज्ञानादि शक्ति को भूलकर, पराश्रय में सुख मानता है; शुभाशुभ इच्छा तथा पाँच इन्द्रियों के विषयों की चाह को नहीं रोकता।

आत्मस्वरूप में सम्यक्प्रकार से स्थिरता-अनुसार जितना शुभ-अशुभ इच्छा का अभाव होता है, वही सम्यक्तप है, जो निर्जरा का कारण है, किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा नहीं मानता।

छन्द - ७

मोक्षतत्त्व सम्बन्धी जीव की विपरीत श्रद्धा

मोक्ष होने पर तेज, तेज में मिल जाता है

वहाँ शरीर, इन्द्रियों, तथा विषयों के बिना सुख कैसे हो सकता है ?

वहाँ से पुन: अवतार धारण करना पड़ता है - इत्यादि।

छन्द - ८

अगृहीत मिथ्याचारित्र का स्वरूप

इन जुत विषयनि की जो प्रवृत्ति, ताकूं जानों मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग एह, अब जे गृहीत सुनिये जु तेह॥

अगृहीत मिथ्यादर्शन तथा अगृहीत मिथ्याज्ञानसहित पाँच इन्द्रियों के विषयों में प्रवृत्ति करना, अगृहीत मिथ्याचारित्र है

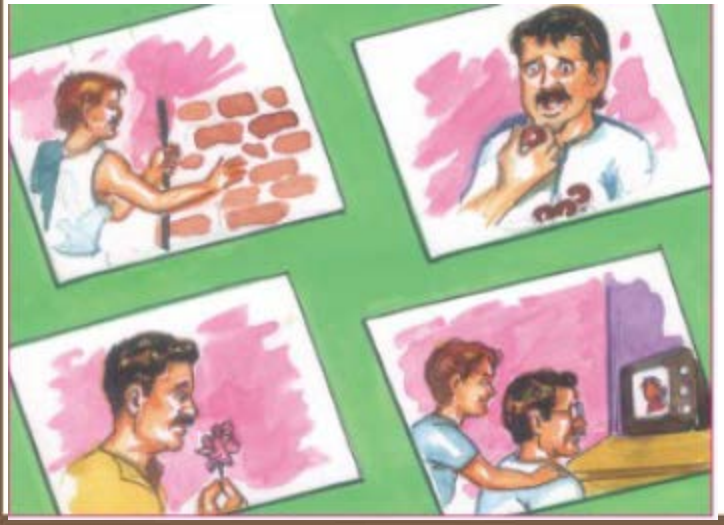

छन्द - ९

गृहीत मिथ्यादर्शन और उसके विषयभूत कुगुरु का स्वरूप

जे कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहिर धन अम्बर तें सनेह॥

गृहीत मिथ्यादर्शन

कुगुरु, कुदेव और कुधर्म की सेवा करने से दीर्घकाल तक मिथ्यात्व का ही पोषण होता है; इसलिए कुगुरु, कुदेव और कुधर्म का सेवन गृहीत मिथ्यादर्शन कहलाता है।

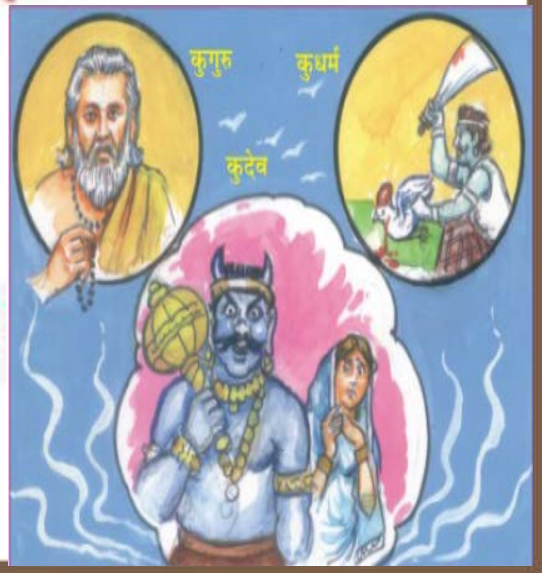

जो वस्त्रादि सहित होने पर भी अपने को जिनलिङ्गधारी मानते हैं, **वे कुगुरु हैं।**

छन्द - १०

कुगुरु को पत्थर की नाव के समान बतलाते हुए, कुदेव का स्वरूप

धारैं कुलिंग लह महत भाव, ते कुगुरु जन्म जल उपल-नाव।
जे राग-द्वेष मल करि मलीन, वनिता गदादिजुत चिह्न चीन ॥

कुगुरु

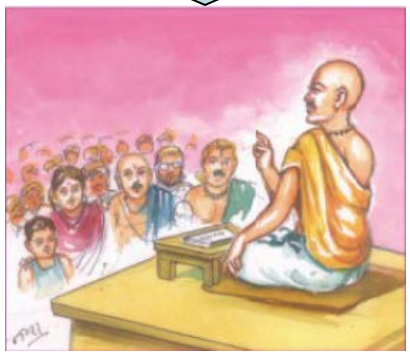

कुदेव

जो राग-द्वेषरूपी मैल से मलिन अर्थात् रागी-द्वेषी हैं और स्त्री, गदा, आभूषण आदि चिह्नों से जिनको पहिचाना जा सकता है, वे **'कुदेव'** हैं।

छन्द - ११

कुधर्म का स्वरूप

ते हैं कुदेव तिनकी जु सेव, सठ करत न तिन भवभ्रमन छेव।
रागादि भाव-हिंसा समेत, दरवित त्रस थावर मरण खेत॥

⇔

राग - द्वेष -मोहरूप भावहिंसा और त्रस-स्थावर जीवों की द्रव्य हिंसारूप सभी क्रियाएँ पाप हैं, उनमें धर्म मानना, **कुधर्म** है।

छन्द - १२

गृहीत मिथ्याज्ञान का वर्णन

जे क्रिया तिनहि जानहु कुधर्म, तिन सरधैं जीव लहै अशर्म।
याकूँ गृहीत मिथ्यात जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान॥

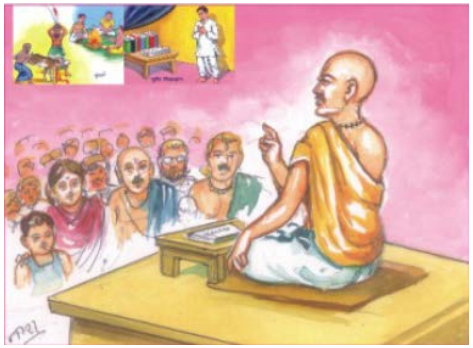

जिस धर्म में मिथ्यात्व तथा रागादिरूप भावहिंसा और त्रस तथा स्थावर जीवों के घातरूप द्रव्यहिंसा को धर्म माना जाता है, उसे कुधर्म कहते हैं। जो जीव उस कुधर्म की श्रद्धा करता है, वह दुःख प्राप्त करता है।

छन्द - १३

गृहीत मिथ्याज्ञान का स्वरूप

एकान्तवाद दूषित समस्त, विषयादिक पोषक अप्रशस्त।
रागी कुमतिन कृति श्रुति अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥

वस्तु अनेक धर्मात्मक है। वस्तु के किसी एक ही धर्म को पूर्ण वस्तु कहनेवाले दूषित / मिथ्या तथा विषय कषायादि की पुष्टि करनेवाले, कुगुरुओं के द्वारा रचित सर्व प्रकार के मिथ्या शास्त्रों को धर्मबुद्धि से लिखना-लिखाना, पढ़ना -पढ़ाना, सुनना और सुनाना, **गृहीत मिथ्याज्ञान** है।

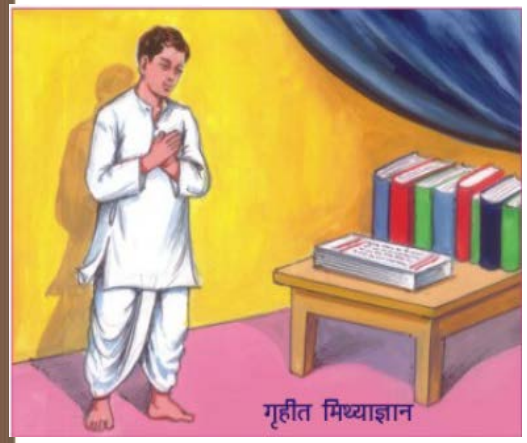
गृहीत मिथ्याज्ञान

जगत में सर्वथा नित्य, एक, अद्वैत और सर्व व्यापक ब्रह्ममात्र वस्तु है; अन्य कोई पदार्थ नहीं है – जो शास्त्र, ऐसा वर्णन करता है, वह एकान्तवाद से दूषित होने के कारण **कुशास्त्र** है।

छन्द - १४

आत्मज्ञान के अभाव में अज्ञानी की सभी क्रियाएँ गृहीत मिथ्याचारित्र हैं –

जो ख्याति लाभ पूजादि चाह, धरि करत विविधि विधि देह दाह।
आतम अनात्म के ज्ञान हीन, जे जे करनी तन करन क्षीन॥

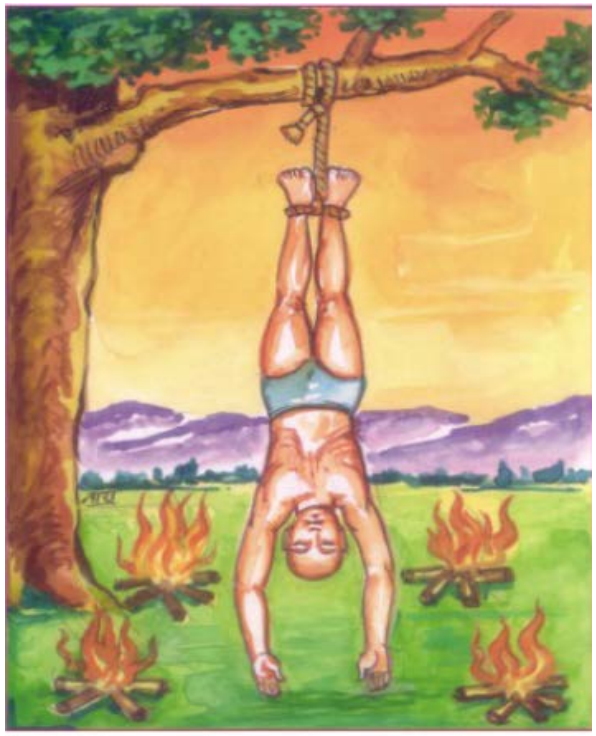

भावार्थ – शरीर और आत्मा के भेदज्ञान से रहित, यश, धन-सम्पत्ति, आदर-सत्कार आदि की इच्छा से अथवा मानादि कषाय के वशीभूत होकर, शरीर को क्षीण करनेवाली सभी क्रियाएँ, **गृहीत मिथ्याचारित्र** हैं।

छन्द - १५

मिथ्याभावों का परित्याग करने और आत्माहित में लगने की पावन प्रेरणा

ते सब मिथ्याचारित्र त्यागि, अब आतम के हित पंथ लागि।
जगजाल भ्रमण कों देय त्यागि, अब दौलत! निज आतम सुपागि॥

आत्महितैषी जीव को निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ग्रहण करके, गृहीत तथा अगृहीत मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र का त्याग करके, आत्मकल्याण के मार्ग में लगना चाहिए।

पण्डित दौलतरामजी अपने आत्मा को सम्बोधन करके कहते हैं - 'हे आत्मन्! पराश्रयरूप संसार अर्थात् पुण्य-पाप में भटकना छोड़कर, सावधानी से आत्मस्वरूप में लीन होओ!'

END OF THE SECOND DHAL

JAYJINENDRA

CONTACT INFORMATION

Email- jainsaurabhjain15@gmail.com

Email-dparihantsaurabh@yahoo.co.in

Ph-0731241540

Mo.9329796325

U.S. contact

Email-jainadhyatma@gmail.com

Email-rajnigosalia@hotmail.com